प्रख्यात व्यंग्यकार शरद जोशी के कुछ व्यंग्य लेख

अनुक्रम

पानी की समस्या

वे लोग जो टीवी देखते हैं, अच्छी तरह जानते हैं कि हमारे प्रधानमंत्री वास्तविकता से सीधा साक्षात्कार करते हैं वे स्वयं उस जगह जाते हैं और पूछकर, बातचीत कर पता लगाते हैं कि सच्चाई क्या है यह उनकी काम करने की शैली है ज़ैसे कोई मुख्यमंत्री उनसे कहे कि साहब, हमारे राज्य में गरीबी है, तो प्रधानमंत्री उसकी बात पर यों ही विश्वास नहीं कर लेते वे वहां जाते हैं, टेलीविजन वालों को साथ लेकर जाते हैं और गरीबों को पूछते हैं : " सुना, आपके गांव में गरीबी है ?" "जी साब !" "कितने गरीब हैं गांव में ?" "जी, सभी गरीब हैं" "आपमें से ज्यादा गरीब कितने है। ?" गांव वाले एक -दूसरे का मुंह देखने लगते है।, "जी सभी ज्यादा गरीब है," -एक सोशल वर्कर कहता है " उन्हें जवाब देने दीजिए, आप बीच में मत बोलिए" "इस गांव की पॉप्यूलेशन क्या है ? कितने लोग रहते हैं इस गांव में ?", प्रधानमंत्री कलेक्टर से पूछते हैं? "जी, कोई सत्तर फेमिलीज हैं," कलेक्टर कहता है "आय वांट एक्जेक्ट फिगर्स " "सिक्स्टी नाइन पॉइंट फाइव" "हूं ! ये पॉइंट फाइव कैसे ?" "जी, एक फैमिली में वाइफ यहीं है, हस्बेंड शहर चला गया है," "हूं !" तो इस तरह हमारे प्रधानमंत्री स्वयं वहां जाते है ओर वास्तविकता से साक्षात्कार करते हैं अर्थात बातचीत से सच्चाई का पता लगाते हैं जैसे एक गांव में पानी की कमी है प्रधानमंत्री स्वयं वहां जाएंगे और सच्चाई का पता लगाएंगे वार्तालाप कुछ इस प्रकार का होगा : " आप लोग पानी पीते हैं ?" " जी हां हुजूर, पीते हैं" "इस गांव में कितने लोग पानी पीते हैं?" " जी, सब पीते हैं प्यास लगती है हुजूर, तो पीना पड़ता है" " कहां से मिलता है पानी ? लाते कहां से हैं ?" "नदी से लाते हैं !" " नल नहीं है ?" " जी, नहीं है" " हूं ! नदी यहां से कितनी दूर है ?" "थोड़ी दूर है " " कैसे लाते हैं पानी ?" " मटकी में भरकर लाते हैं" " मटकी घर से ले जाते हैं या नदी पर मिल जाती है ?" " जी, घर से लेकर जाना पड़ता है" "आई सी! नदी पर मटकियों का कोई इंतजाम नहीं रहता तो आप जब मटकी लेकर नदी पर जाते हैं तब नदी में पानी मिल जाता है ? या मुश्किल पड़ती है ?" "पहले मिल जाता था, आजकल मुश्किल पड़ती है" " क्या मुश्किल पड़ती है ? एक नदी में कितनी मटकी पानी होता है ?" "काफी मटकी होता है" "आइ वांट टू सी ए मटकी ! एक्जेक्ट क्या साइज होती है उसकी ?," प्रधानमंत्री ने कहा फौरन एक गरीब के घर से एक मटकी लाकर प्रधानमंत्री को दिखाई गई "ये मिट्टी से बनती है ?" "जी!" " हम मिट्टी इंपोर्ट करते हैं या यही की है ?" "जी, लोकल मिट्टी है" " गुड उस एक मटकी में कितने बकेट पानी आ जाता है ? इसमें कितनी बाल्टी पानी आ जाता है ?" "कोई डेढ़ बाल्टी आता है" " आप बड़ी मटकी लेकर क्यों नहीं जाते? ज्यादा पानी आ सकता है या सभी मटकियां एक साइज की होती हैं ?" "जी, बड़ी भी होती हैं, मगर उठाने में भारी पड़ती हैं" " एक बार में कितनी मटकी उठाते है। ?" " जी, एक उठाते हैं !"

"पानी से भरी हुई या खाली ?" "पानी से भरी हुई" " आप खुद उठाते या दूसरे से उठवाते हैं ?" "जी, खुद उठाते हैं" " कितने आदमी लगे हैं इस काम पर ?" "जी, सभी लगे रहते हैं" "नदी से चौबीसों घंटे पानी मिलता है या उसका फिक्स टाइम है, इतने बजे से इतने बजे तक ?" "जब मिलता है, तब चौबीसों घंटे मिलता है" " आजकल कितने घंटे मिलता है ?" "आजकल नदी सूख गई है" " जब सूख जाती है, तब कितने घंटे मिलता है ?" " तब नहीं मिलता" "एक -दो घंटे भी नहीं ?" " नहीं!" प्रधानमंत्री का चेहरा गंभीर हो जाता है वे सोचने लगते हैं फिर कलेक्टर से पूछते हैं, " ये नदी सूख क्यों जाती है ?" " ये सर, गर्मी में एटमॉस्फेरिक टेंपरेचर बढ़ जाता है, उससे सूख जाती है," आईएएस क़लेक्टर जवाब देता है "कांट वी हैव सम शेड ऑर समथिंग, जो नदी के ऊपर लगा दें, जिससे छाया रहे? पानी पर धूप न पड़े, ऐसा ही कुछ हो जाए" " नो सर, इट इज नॉट पॉसिबल!" " क्यों ? वी कैन टॉक टू वर्ल्ड बैंक अबाउट इट सारी नदियों पर शेड लगा दिए जाएं ख़ासकर उन नदियों पर, जो गांवों के पास में बहती हैं वी कैन सर्च आउट दोज प्रॉब्लम एरिआज" "सर, उसमें प्रैक्टिकल डिफिकल्टीज हैं" " क्या डिफिकल्टीज हैं ?" " क्या है सर कि एक तो नदी का पाट बहुत चौड़ा होता है उसको कवर करना बहुत मुश्किल है दूसरे, नदी के आसपास की सॉइल कंडीशन, रेती और कीचड़ के कारण ऐसी होती है कि उसमें पिलर्स खड़े करना बड़ा डिफिकल्ट है" "आइ सी !" तब दूसरे अफसर ने, जो इस अफसर के प्रधानमंत्री से ज्यादा बात कर लेने की वजह से परेशान हो गया था, और स्पष्ट करते हुए कहा, " दूसरी प्रॉब्लम यह है सर कि अगर हम नदी को कवर कर देंगे तो बरसात में जो पानी नदी में गिरता है, वह नहीं गिर सकेगा" प्रधानमंत्री ने गर्दन हिलाई वे प्रॉब्लम समझ गए थे सामने खड़े प्यासे गांव वाले उनमें क्या बातें हो रही हैं, यह तो समझ नहीं पा रहे थे; मगर उन्हें इतना समझ आ रहा था कि प्रधानमंत्री उनकी पानी की समस्या के हल को लेकर बहुत चिंतित हैं और वे अफसरों से इस बारे में बात कर रहे हैं प्रधानमंत्री ने फिर गांव के लोगों से पूछा "जब नदी से पानी नहीं मिलता तो आप वहां मटकी लेकर क्यों जाते हैं?" "हम कुएं पर जाते हैं साब , नदी पर नहीं जाते !" "कुएं पर पानी मिल जाता है, जब नदी पर नहीं होता ?" "जी!" " एक कुएं से कितना पानी मिल जाता है ? पूरे गांव को मिल जाता है ?" "काफी मिल जाता है" दूसरे ने कहा " आप लोगों को कौन-सा पानी अच्छा लगता है ? नदी का पानी अच्छा लगता है या कुएं का ?", प्रधानमंत्री ने पूछा "जी, जहां से मिल जाए, वहीं का अच्छा लगता है" "नदी के पानी में थोड़ा कचड़ा होता है साहब!" "फिर आप क्या करते हैं ? नदी को छान लेते हैं ?" "पूरी नदी तो नहीं छानते साब हम ज़ो पानी लेते है।, वो छान लेते हैं" "बाकी का छोड़ देते हैं ?" "जी साहब !" "और नदी से क्या-क्या मिलता है पानी के अलावा ?" सब एक-दूसरे को देखने लगे क़िसी को जवाब नहीं सूझता "नदी से पानी मिलता है, पर इसके अलावा और क्या-क्या मिलता है ?," प्रधानमंत्री ने अपनी बात को

दोहराते हुए पूछा, "पुल मिलता है नदी पर ? " जी, नहीं मिलता" "बांध मिलता है नदी पर ?" "जी, कोई बांध नहीं है" "इज इज सरप्राइजिंग आफ्टर फोर्टी ईयर्स ऑफ फ्रीडम, नदी पर एक बांध नहीं है!" , प्रधानमंत्री ने अफसरों से कहा अफसरों ने शरम से सिर झुका लिया फ़िर एक अफसर ने हिम्मत करके कहा, " सर, सिक्स्थ प्लान में नदी पर बांध बनाने का प्रपोजल था" "फिर क्या हुआ ?" "सर्वे करने पर पता चला कि नदी में पानी नहीं है, इसलिए बांध बनाना फिजूल होगा" "हम इतना भी पानी अरेंज नहीं कर सकते कि एक बांध बनाया जा सके ? प्रधानमंत्री ने कहा अफसरों ने शरम से फिर सिर झुका लिया प्रधानमंत्री ने मुख्यमंत्री की ओर देखा, जो साथ ही पीछे'पीछे चल रहे थे मुख्यमंत्री ने अपनी टोपी ठीक की, थोड़ा खांसे ओर फिर बोले, "मैंने आपसे दिल्ली में भी निवेदन किया था श्रीमान कि नदी के पानी को लेकर अंतर्राज्यीय डिस्प्यूट है 1967 में इस समस्या पर एक हाई पावर कमीशन बैठा था, जिसकी सिफारिशें अमान्य कर दी गई मैंने कांग्रेस अधिवेशन में भी यह सवाल उठाया था श्रीमान" "कमीशन इस नदी पर बांध बनाने के लिए था ?", प्रधानमंत्री ने पूछा "जी नहीं, वह दूसरी नदी पर था" मुख्यमंत्री ने कहा 'मैं आपसे इस नदी का पूछ रहा हूं !" "प्लानिंग कमीशन कहता है कि जिन नदियों में पूरे वर्ष पानी नहीं रहता, वहां हम बांध बनाने को प्रिआरिटी नहीं दे सकते, क्योंकि उससे बिजली नहीं बनेगी" प्रधानमंत्री कुछ सोचने लगे मामला उलझा हुआ है क्रंप्यूटर को फीड करना पड़ेगा फ़िर वे लोगों की तरफ घूमें "कितने कुएं हैं आपके गांव में ?" "जी, एक भी नहीं है !" "फिर आप मटकी लेकर कहां जाते हैं ?" "पास वाले गांव में" "वहां कुआं है ?" "पानी मिल जाता है ?" "मिल जाता है, मगर भीड़ बहुत पड़ती है" "वो गांव कितनी दूर है ?" " दो मील दूर है" " लौटने पर भी दो मील पड़ता है ? "जी, उतना ही पड़ता है" " जाने के लिए कोई साधन है, बस, टैक्सी?" " जी नहीं, कोई साधन नहीं, पैदल जाना पड़ता है" प्रधानमंत्री के चेहरे पर पीड़ा की रेखाएं उभर आई उन्होंने अफसरों से पूछा कि क्या इन दो गांवों के बीच हम बस सर्विस नहीं प्रोवाइड कर सकते, पानी लाने के लिए उस दिन, एक विराट जनसभा को संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री ने कहा, " हमने देखा और हम देखेंगे कि आपके गांवों में पानी की समस्या है लोगों को, खासकर महिलाओं को दूसरे गांवों से पानी लाना पड़ता है- मटकी में भारकर हमने देखा कि पानी सिर पर उठाकर लाना पड़ता है हम चाहते हैं कि हमारे देश में हर गांव के पास एक नदी हो ख़ासकर उन गांवों के पास, जहां पानी नहीं है हम देखेंगे कि आप लोगों को मटकी नहीं उठानी पड़े या तो गांव नदी के पास ले जाएं या वे नदियां गांव के पास लाई जाएं ज़ो भी जरूरी होगा, हम करेंगे, सरकार करेगी और भी समस्या,जैसे बस चलाने की या बांध की, सब हम पूरी करेंगे वो हमें बड़ी जल्दी करना है हमें बताया गया कि यहां पर जो मटकियां आप लोग उठाते हैं वे मिट्टी की बनी होती हैं उस बारे में हमें कुछ करना है देश में पानी-ही -ही पानी कर देना है वो चाहे नदी का हो या बरसात

का या समुद्र का हम चाहते हैं और हम कोशिश करेंगे कि आपके यहां बरसात जल्दी आए या नदी में पानी जल्दी आए या जैसा भी हो सके हम बैंकों से बात करेंगे कि मटकियों के सवाल पर जितना कर सकते हैं, करें हमें देश को आगे ले जाना है इस पर एक युवक, जो अगले चुनाव में कांग्रेस के टिकट का उम्मीदवार था, जोर से चिल्लाया- राजीव गांधी की जय इस पर सबने 'जय' कहा और प्रधानमंत्री का कारवां दूसरे गांव की समस्या समझने के लिए आगे बढ़ गया .

चुनाव गीतिका:सरलार्थ

(1) इस बार चुनाव जल्दी लग गए। क्या करें , निष्ठुर पीएम से हमारा सुख देखा न गया। उसने हमें समय बीतने से पहले ही निगोड़ी जनता में पठवा दिया। हाय! अभी तो स्वार्थों के चकवा-चकवी जी-भर मिल नहीं पाए थे। निजी सुखों की कमल जोड़ी से भ्रष्ट पवन मधुर छेड़छाड़ कर ही रहा था। अभी-अभी तो यह सेवाभावी तन डनलप-पिलो के मनोहर पाश में सिमटा ही था कि समय के निर्दयी मुर्गे ने बांग देकर कहा कि चुनाव आ गए! कवि कहते हैं कि एक और दलबदल करने की इच्छा नेता के हृदय में शेष ही थी कि हाय देखो यह कैसी अघट घटी। बेचारे क्या करें कुछ समझ नहीं पड़ रहा।

(2) अय सखी , आज चहुं दिशि यह शोर कैसा ? बकुलों के समान श्वेत परिधान धारे कार्यकर्ता जनों की पांत कहां प्रयाण कर रही है ? रसिक जन आज रसिकता छोड़ राजनीति की चर्चा में काहे मगन हैं ? क्या श्रृंगार अब रसराज नहीं रहा ? फेरियां लगाकर तरुणियों के सौन्दर्य का अन्दाज लगाने वाले वे भ्रमरवृन्द आज उन्हें नम्र स्वरों में ' बहनजी ' के आदरसूचक शब्दों में क्यों सम्बोधित कर रहे हैं ? सदा सहमत होने वाली प्रौढ़ाएं भी आज मानिनी मुग्धाओं के समान रूठी हुई क्यों लग रही हैं ? मेरा प्रीतम आज इतनी सुबह मुझे सोता छोड़ नारों से मण्डित पोस्टरों का बण्डल बगल में दाबे कहां चल दिया ?
कवि कहते हैं कि देश में अकस्मात चुनाव आ जाने से पुर की सुन्दरियां परस्पर जिज्ञासा कर वास्तविकता जानने को बड़ी आकुल हैं।

(3) सुन सखी , आज मुझे वह फिर दिखाई दिया जो पिछली बेर गलियों में आकर भाषण दे गया ? मीठी-मीठी बातों का धनी , वह चतुर नट जिसने फुसलाकर हमारा वोट हर लिया। आज मुझे सुबह की वेला वह फिर दिखाई दिया। मैं नहाई हुई आंगन में थी। निचोड़ने पर मेरे बालों से जलधारा यों झर रही थी मानो मोती झर रहे हों। वस्त्र भीगे हुए थे। मैं

ठिठुरती धूप में बैठी हुई थी। क्या कहूं , तभी उस निर्लज्ज ने मुझे देखा और मैंने उसे। वह ललचाए नेत्रों से मुझे देख रहा था मानो मुझसे कुछ चाह रहा हो।
कवि कहते हैं कि कौन नहीं जानता कि चुनाव की वेला में सुन्दरियां वोट मात्र रह जाती हैं। चतुर नट उनसे बस वही मांगता है।
(4) नारों ने आकाश छू रखा था , भोंगे गुंजायमान थे , पदत्राण शिरस्त्राण हो रहे थे अर्थात जूते चल रहे थे। देखो , चुनाव की यही शोभा है। नगर के गुण्डे उस समय कार्यकर्ता बन गए थे , स्मगलरों का त्याग अति सराहनीय था। चोर-बाजार के व्यापारी प्रजातन्त्र के दायित्वों के प्रति जागरूक हो गए थे। व्यक्ति समाज का ही अंग है , यह इस चुनाव ने फिर सिद्ध कर दिया , जब लोगों ने अपनी जीपें तथा अन्य वाहन राजनीतिक दलों को दे दिए। बागों , वनों , गृहों , गलियों और चौमुहानों पर खुलेआम झूठ बका जा रहा था। सत्य क्या है , असत्य क्या है , इसका भेद करना गुनीजन के लिए भी कठिन था। कवि कहते हैं ऐसी गन्दगी में विचरण करना और सफल होना उसी छबीले का काम है जो हमारे गीतों का नायक है। चुनाव रूपी पंक का वही पंकज मेरा आराध्य है।
(5) आज तो विचित्र ही प्रसंग हुआ। नेता ने अपने मित्रों को एक करुण कथा सुनाई। हुआ यह है कि सकल दिवस चुनाव-प्रसार में व्यस्त रहने के उपरान्त चुनाव का वह उम्मीदवार एक अफसर मित्र के आवास पर पहुंचा और यह अनुनय करने लगा कि मुझे रात्रि में अपने यहां विश्राम करने दें , प्रातः होने पर मैं चला जाऊंगा। तिस पर उस अफसर मित्र ने असहमत होकर जो कहा , वह अत्यन्त ' निराला ' था :
बांधो न नाव इस ठांव बन्धु , चलते हैं इधर चुनाव बंधु
उसने नेता को द्वार से बिना सत्कार ही इनकार कर दिया। नेता ने व्यथा भरे स्वरों में मित्रों को बताया कि यह वही अफसर था जिसके प्रमोशनार्थ मैंने कैबिनेट पर जोर डाला और विगत वर्षों में तीन बार जिसके तबादले रुकवाए।
कवि कहते हैं , चुनाव की बलिहारी हैं जिसमें मित्र शत्रु सम और शत्रु मित्र सम व्यवहार करने लग जाते हैं।
(6) उस दिन वह छलिया मेरे द्वार भी आया था। मैं तन को अंगराग लगा नाना आभूषणों से स्वयं को सजा रही थी। लम्पट ने तभी कुण्डी खटखटाई। मैंने द्वार पर ही उससे वार्ता की। उस समय तेल से सनी हुई उसकी घुंघराली लटें तथा तम्बाकू के बीड़े चबाते हुए श्याममुख में दन्त पक्तियां अलग ही शोभा दे रही थीं। चुनाव को ध्यान में रख उसने कुर्ते में सूराख कर लिए थे और उन पर पैबंद लगा अपनी अजब सज-धज बनाई थी। उस दिन तो वह बड़े जनवादी ठाठ में था। हे सखी , इसे भाग्य कहूं या दुर्भाग्य कि चुनाव आया और उस शठ के किए विगत शब्दों की स्मृतियां मन में फिर ताजा हो गईं , जिन्हें मैं सचमुच ही भुला चुकी थी।

कवि कहते हैं कि राजनीति के रसिया ने गलियों में ऐसी धूम मचाई थी कि पुर की वनिताएं चकित थीं अर्थात कुछ समझ नहीं पा रहीं थीं।

(7) बहुत-बहुत कर अनुनय , पहले भी ले गए थे वोट ओ स्वार्थ हृदय
बहुविध चाटु वचन , अवसर-प्रेरित सिद्धान्त रचन
तब तकनीक जनमोहन , गमन करो सत्वर इस बार , अन्य दिशा सदय

अर्थात हे स्वार्थी हृदय वाले नेता , पिछली बार भी तुम बहुत विनय कर वोट ले गए थे। अनेक प्रकार से मन को प्रसन्न करनेवाले वचन बोलने वाले तुम अवसर से प्रेरित सिद्धान्त रचने में प्रवीण हो अर्थात जैसा मौका देखते हो वैसी बात करते हो। तुम्हारी शैली जनता को मोहित करती है , पर जहां तक मेरा प्रश्न है , तुम यहां से जल्दी खिसको। दया करो , कहीं और जाओ।

(8) अरी सखी , इस चुनाव ने मेरे प्रेमियों की संख्या बढ़ा दी। देख नहीं रही थी उन दिनों गलियों में कितने चक्कर काट रहे थे। हर कोई आकर मुझसे मेरा वोट मांग रहा था। वोट रूपी कमल एक था , पर उसे पाने को उत्सुक भ्रमर अनेक। उस दिन वह मुझे पोलिंग बूथ पर आने का संकेत कर गया था। मुझे वह अपना चिह्न भी दे गया था , जिसे मैंने कलेजे में छिपाकर रख लिया था।

कवि कहता है कि चुनाव के लड़ैया कितनी ही चिरौरी करें , हमारी कमलनयनों वाली नायिका ने तो उसी छली को वोट दिया जिसका कुंज-गलियों में भारी प्रचार था।

(9) रात-रात भर हुई जगाई , लाल-लाल भये लोचन
कैसे भरमाएं वोटर को , सखा सहित रत सोचन
जाओ शर्मा , जाओ वर्मा , शोधो अपनी-अपनी जाति
मैं हूं जातिवाद से ऊपर , दुहराओ रह-रह यह ख्याति।

तात्पर्य स्पष्ट है। चुनाव-काल में रात-भर जगने से नेता की आंखें लाल हो गई हैं अर्थात वह क्रोधित है। उस दिन मित्रों के साथ बैठा यही सोच रहा था कि किस भांति जनता को चुनाव हेतु फुसलाकर विजय प्राप्त कर ली जाए। वह कार्यकर्ताओं से , जिनके नाम शर्मा-वर्मा थे , कह रहा था कि तुम जाकर अपनी-अपनी जाति से मुझे वोट देने के लिए संपर्क साधो और प्रचार करो कि मैं जातिवाद से ऊपर हूं। पद में नेता के चरित्र का विरोधाभास दर्शाया गया है। शेष पंक्तियां सरल हैं।

(10) अब वह अपनी क्रीड़ा भूमि को छोड़ जा रहा है। वह चुनाव जीत गया है और व्यर्थ के मोहों से उसने मुक्ति प्राप्त कर ली है। उसने जनता से किए अपने वादे यहीं की गन्दी नालियों में फेंक दिए हैं। अपने नारों की स्मृति मात्र से वह ऊब जाता है। अब अपने पोस्टरों की ओर वह हंसकर उपेक्षा से अवलोकता है , उसके घोषणा-पत्र मार्ग में बिखरे हुए हैं जिन्हें रौंदता हुआ वह राजधानी लौट रहा है।

कवि कहते हैं कि चुनाव तो चार दिन की चांदनी होता है, जिसमें जनता चाहे इतरा ले मगर बाद में तो वही अन्धकार होता है।
(11) हाय सखी, वह निर्दयी चला गया। इस बार भी लगता है मानो मुझे छला गया। मेरे हाथों पर लगा मतदान के समय का काल चिह्न मिटा भी नहीं था कि वोट के उस लोभी ने मुझे भुला दिया। वन कानन में उसके सरस नारों की अनुगूंज अभी शेष नहीं हुई थी कि अनेक गालियों के साथ स्मरण किए जाने वाले नेता ने यह स्थल छोड़ दिया। आज मैं छज्जे पर खड़ी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी, पर उन निष्ठुर ने इस ओर तनिक भर न झांका। उसे मत देने के अतिरिक्त पता नहीं मुझे कौन-सा अपराध हुआ जो मुझसे दूर हो गया।
कवि कहते हैं कि जिसके कर्म देख लज्जा स्वयं लज्जित हो, उसको ओ लाजवन्ती तू किस विधि लाएगी।
(12) धूर्तों में परम धूर्त, आदर्शवादियों में परम आदर्श के रूप में शोभित वह चतुर बहुरूपिया ही अब मेरे ताप हरेगा। उसी बहुरंगी नेता को, जिसके द्वार अपने भक्तों और चमचों के लिए सदैव खुले रहते हैं और जो सकल विरोधियों को उन्मूलित करने का प्रण लिए है, मैंने स्वयं को समर्पित कर दिया है।
कवि कहता है मुझ अबल में इतनी सार्मथ्य कहां कि मैं उस नेता को जनमोहिनी शोभा और फलदायी कर्मों का बखान करूं। मुझे तो केवल इतना ज्ञान है कि ऐसे चतुर राजनीतिज्ञों की वन्दना ही कवि के जीवन को सुखी बनाती है। चुनाव रूपी युद्ध के विजेता, सत्ता रूपी मकरन्द के परम लोभी, जनता रूपी नायिका के मन को रिझाने में प्रवीण वह मेरे गीतों का नायक ही मेरा सच्चा सुखदाता है, जो मंत्री बनते ही मेरे कष्ट हरेगा और मुझे ऊंचा पद दिलाएगा।
राधा रूपी जनता को बिलखता छोड़, सत्ता रूपी रुक्मिणी में खोए हुए ओ रमणीय, तू चमचों से घिरा रहने पर कहीं यह न भूल जाना कि मैं सदा तेरी ही मूरत ध्यान में रख कलम उठाता हूं।

अथ श्री गणेशाय नम:

अथ श्री गणेशाय नम:, बात गणेश जी से शुरू की जाए, वह धीरे-धीरे चूहे तक पहुँच जाएगी। या चूहे से आरंभ करें और वह श्री गणेश तक पहुँचे। या पढ़ने-लिखने की चर्चा

की जाए। श्री गणेश ज्ञान और बुद्धि के देवता हैं। इस कारण सदैव अल्पमत में रहते होंगे, पर हैं तो देवता। सबसे पहले वे ही पूजे जाते हैं। आख़िर में वे ही पानी में उतारे जाते हैं। पढ़ने-लिखने की चर्चा को छोड़ आप श्री गणेश की कथा पर आ सकते हैं।

विषय क्या है, चूहा या श्री गणेश? भई, इस देश में कुल मिलाकर विषय एक ही होता है - ग़रीबी। सारे विषय उसी से जन्म लेते हैं। कविता कर लो या उपन्यास, बात वही होगी। ग़रीबी हटाने की बात करने वाले बातें कहते रहे, पर यह न सोचा कि ग़रीबी हट गई, तो लेखक लिखेंगे किस विषय पर? उन्हें लगा, ये साहित्य वाले लोग 'ग़रीबी हटाओ' के ख़िलाफ़ हैं। तो इस पर उतर आए कि चलो साहित्य हटाओ।

वह नहीं हट सकता। श्री गणेश से चालू हुआ है। वे ही उसके आदि देवता हैं। 'ऋद्धि-सिद्धि' आसपास रहती हैं, बीच में लेखन का काम चलता है। चूहा पैरों के पास बैठा रहता है। रचना ख़राब हुई कि गणेश जी महाराज उसे चूहे को दे देते हैं। ले भई, कुतर खा। पर ऐसा प्राय: नहीं होता। 'निज कवित्त' के फीका न लगने का नियम गणेश जी पर भी उतना ही लागू होता है। चूहा परेशान रहता है। महाराज, कुछ खाने को दीजिए। गणेश जी सूँड पर हाथ फेर गंभीरता से कहते हैं, लेखक के परिवार के सदस्य हो, खाने-पीने की बात मत किया करो। भूखे रहना सीखो। बड़ा ऊँचा मज़ाक-बोध है श्री गणेश जी का (अच्छे लेखकों में रहता है) चूहा सुन मुस्कुराता है। जानता है, गणेश जी डायटिंग पर भरोसा नहीं करते, तबीयत से खाते हैं, लिखते हैं, अब निरंतर बैठे लिखते रहने से शरीर में भरीपन तो आ ही जाता है।
चूहे को साहित्य से क्या करना। उसे चाहिए अनाज के दाने। कुतरे, खुश रहे। सामान्य जन की आवश्यकता उसकी आवश्यकता है। खाने, पेट भरने को हर गणेश-भक्त को चाहिए। भूखे भजन न होई गणेशा। या जो भी हो। साहित्य से पैसा कमाने का घनघोर विरोध वे ही करते हैं, जिनकी लेक्चररशिप पक्की हो गई और वेतन नए बढ़े हुए ग्रेड़ में मिल रहा है। जो अफ़सर हैं, जिन्हें पेंशन की सुविधा है, वे साहित्य में क्रांति-क्रांति की उछाल भरते रहते हैं। चूहा असल गणेश-भक्त है।

राष्ट्रीय दृष्टिकोण से सोचिए। पता है आपको, चूहों के कारण देश का कितना अनाज बरबाद होता है। चूहा शत्रु है। देश के गोदामों में घुसा चोर है। हमारे उत्पादन का एक बड़ा प्रतिशत चूहों के पेट में चला जाता है। चूहे से अनाज की रक्षा हमारी राष्ट्रीय समस्या है। कभी विचार किया अपने इस पर? बड़े गणेश-भक्त बनते हैं।

विचार किया। यों ही गणेश-भक्त नहीं बन गए। समस्या पर विचार करना हमारा पुराना मर्ज़ है। हा-हा-हा, ज़रा सुनिए।
आपको पता है, दाने-दाने पर खाने वाले का नाम लिखा रहता है। यह बात सिर्फ़ अनार और पपीते को लेकर ही सही नहीं है, अनाज के छोटे-छोटे दाने को लेकर भी सही है। हर दाने पर नाम लिखा रहता है खाने वाले का। कुछ देर पहले जो परांठा मैंने अचार से लगाकर खाया था, उस पर जगह-जगह शरद जोशी लिखा हुआ था। छोटा-मोटा काम नहीं है, इतने दानों पर नाम लिखना। यह काम कौन कर सकता है? गणेश जी, और कौन? वे ही लिख सकते हैं। और किसी के बस का नहीं है यह काम। परिश्रम, लगन और न्याय की ज़रूरत होती है। साहित्य वालों को यह काम सौंप दो, दाने-दाने पर नाम लिखने का। बस, अपने यार-दोस्तों के नाम लिखेंगे, बाकी को छोड़ देंगे भूखा मरने को। उनके नाम ही नहीं लिखेंगे दानों पर। जैसे दानों पर नाम नहीं, साहित्य का इतिहास लिखना हो, या पिछले दशक के लेखन का आकलन करना हो कि जिससे असहमत थे, उसका नाम भूल गए।

दृश्य यों होता है। गणेश जी बैठे हैं ऊपर। तेज़ी से दानों पर नाम लिखने में लगे हैं। अधिष्ठाता होने के कारण उन्हें पता है, कहाँ क्या उत्पन्न होगा। उनका काम है, दानों पर नाम लिखना ताकि जिसका जो दाना हो, वह उस शख़्स को मिल जाए। काम जारी है। चूहा नीचे बैठा है। बीच-बीच में गुहार लगाता है, हमारा भी ध्यान रखना प्रभु, ऐसा न हो कि चूहों को भूल जाओ। इस पर गणेश जी मन ही मन मुस्कराते हैं। उनके दाँत दिखाने के और हैं, मुस्कराने के और। फिर कुछ दानों पर नाम लिखना छोड़ देते हैं, भूल जाते हैं। वे दाने जिन पर किसी का नाम नहीं लिखा, सब चूहे के। चूहा गोदामों में घुसता है। जिन दानों पर नाम नहीं होते, उन्हें कुतर कर खाता रहता है। गणेश-महिमा।
एक दिन चूहा कहने लगा, गणेश जी महाराज! दाने-दाने पर मानव का नाम लिखने का कष्ट तो आप कर ही रहे हैं। थोड़ी कृपा और करो। नेक घर का पता और डाल दो नाम के साथ, तो बेचारों को इतनी परेशानी नहीं उठानी पड़ेगी। मारे-मारे फिरते हैं, अपना नाम लिखा दाना तलाशते। भोपाल से बंबई और दिल्ली तलक। घर का पता लिखा होगा, तो दाना घर पहुँच जाएगा, ऐसे जगह-जगह तो नहीं भटकेंगे।

अपने जाने चूहा बड़ी समाजवादी बात कह रहा था, पर घुड़क दिया गणेशजी ने। चुप रहो, ज़्यादा चूं-चूं मत करो।
नाम लिख-लिख श्री गणेश यों ही थके रहते हैं, ऊपर से पता भी लिखने बैठो। चूहे का क्या, लगाई जुबान ताल से और कह दिया। न्याय स्थापित कीजिए, दोनों का ठीक-ठाक

पेट भर बँटवारा कीजिए। नाम लिखने की भी ज़रूरत नहीं। गणेश जी कब तक बैठे-बैठे लिखते रहेंगे?

प्रश्न यह है, तब चूहों का क्या होगा? वे जो हर व्यवसाय में अपने प्रतिशत कुतरते रहते हैं, उनका क्या होगा?
वही हुआ ना! बात श्री गणेश से शुरू कीजिए तो धीरे-धीरे चूहे तक पहुँच जाती है। क्या कीजिएगा?

यह बंगला फिल्म

लड़कियाँ और विशेष रूप से सुंदर लड़कियाँ बी.ए. करें, यह पुरानी और घर–घर की समस्या है। इस समस्या पर एक फ़िल्म भी तानकर खड़ी की जा सकती है, इसका हमें अनुमान न था। मगर बंगालियों की बात ही अलग। क्या कहने!

उस सिनेमा हाल में, जाने क्यों, हम अनफिट लग रहे थे। फ़िल्म की विशेषता थी कि वह बंगला में थी और हमारी विशेषता थी कि हम बंगला नहीं जानते। रहा कलाप्रेमी होने का सवाल तो कलाप्रेमी कोई मोर का पंख नहीं, जिसे सिर में खोंस लिया जाए। चारों ओर चटर्जी, मुखर्जी और भट्टाचार्य किस्म के लोग बैठे थे, धोती, कुर्ता पहने। और उनके सामने बैठे मैं और नरेंद्र दोनों गँवार लग रहे थे। हमें बंगला नहीं आती। जब तक हाल में अँधेरा नहीं हुआ यही हालत बनी रही। हम चुपचाप सिर झुकाए बैठे रहे। अँधेरा हुआ, तो हमारा गँवारापन विलीन हो गया और एक बंगला फ़िल्म पूरी गरिमा के साथ दिखाई जाने लगी।

वह बंगला लेखक की बंगला कहानी पर बनी बंगाली फ़िल्म थी जिसे बंगाल के एक प्रोड्यूसर ने बंगाली अभिनेता और अभिनेत्रियों की मदद से बंगाल में ही बनाया था। कहानी बंगाल के एक छोटे से क़स्बे में रहनेवाले बंगाली परिवार की थी। यानी उसमें सबकुछ बंगाली था, नरेंद्र जो थोड़ा–बहुत संगीत समझता है, बता रहा था कि पृष्ठभूमि में जो संगीत बज रहा है, वह भी बंगाली है। इतने सबके बावजूद हमने पूर्ण कोशिश की कि चित्र को समझा जाए।

और हम बड़ी जल्दी समझ गए कि फ़िल्म सामान्य प्रेमकथा नहीं है। हीरोइन (आह, क्या भरी–पूरी हीरोइन थी!) इंटर कर चुकी है और उसके बी.ए. करने की समस्या है। पूरा

ताना–बाना इस छोटी–सी समस्या को लेकर बुना गया था। हीरो भी इसी समस्या से ग्रस्त था। हीरोइन से पहली मुलाकात में ही पूछा, तोमार बीए होये गे छे?
हीरोइन ने इस प्रश्न पर कुछ उड़ता–उड़ता–सा जवाब दिया, आमार बीए कोरबार दोरकार नेई।

हम समझ गए कि लड़की इंटर कर चुकी है, मगर फिलहाल बी.ए. करने कै मूड में नहीं है, मगर हीरो चाहता था कि हिरोइन बी.ए. कर ले। वह जब मिलता, हीरोइन से एक ही प्रश्न घुमा–फिराकर करता, बीए, कोरबे ना कोरबे?

हीरो शायद उसी वर्ष बी.ए. में बैठ रहा था और चाहता था कि हीरोइन भी साथ ही बी.ए. कर ले, परीक्षा में बैठ जाए। झरने के पासवाले सीन में, जिसमें काफ़ी सारे बादल दिखाए गए थे और बड़ा सुरीला बेकग्राउण्ड म्यूज़िक बज रहा था, उसने उस भरी–पूरी हीरोइन का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा था, आमार शोंगे बीए कोरबे?

हीरोइन लजा गई। हमें लगा, वह वास्तव, में पढ़ना चाहती है, मगर चाहकर भी आगे पढ़ नहीं पा रही है।

पिक्चर में एक अदद विलेन भी था, जो ज़मींदार किस्म का शख़्स था और हाथ में डंडा रखता था। वह भी चाहता था कि हीरोइन ग्रेज्युएट हो जाए। जब हीरोइन अपने घर पर जल प्रदाय की शाश्वत समस्या का हल खोजने कमर में घड़ा दाब झरने की तरफ़ जाती, विलेन पगडंडी काट खड़ा हो जाता और कहता, शुंदोरी!
आमी तोमार शोंगे बीए कोरबोई कोरबो!

हमें आश्चर्य हुआ कि यह मुछंदर विलेन बी.ए. करने से अभी तक सिर्फ़ इसीलिए रुका हुआ है, क्योंकि यह हीरोइन शुंदोरी के साथ बी.ए. करना चाहता है! इसी नज़ारे के आसपास इंटरवल हो गया और हम समोसों की दिशा में लपके।

हमें समझ नहीं आ रहा था कि कमबख़्त हीरोइन बी.ए. क्यों नहीं कर लेती? इतने समय में तो वह बी.ए. छोड़ एम.ए. कर सकती थी। और अगर वह बी.ए. नहीं करना चाहती तो न करे। इसमें खुद इतना परेशान होने या पब्लिक को बोर करने की क्या बात है? और वह हीरो सिर्फ़ इतनी-सी बात के लिए उस हीरोइन के पीछे क्यों लगा रहता है! दुनिया में और भी ग़म है बी.ए. करने के सिवा।

यार मुझे तो इस हीरोइन के इंटरमीडिएट होने में भी शक है। नरेंद्र बोला, जिस तरह यह लड़की दिन–भर पानी भरती रहती है, कपड़े सुखाती रहती है, खाली बैठी रहती है, मैं नहीं समझता इसने कॉलेज की शक्ल भी देखी है।

तुम समझते नहीं, नरेंद्र, बंगाल की परिस्थितियाँ हमारे मध्यप्रदेश से बिल्कुल भिन्न हैं। वहाँ पिछले वर्षों शिक्षा का तेज़ी से विकास हुआ हैं, गाँव–गाँव में कालेज खुल गए हैं और युवकों तथा युवतियों पर चारों तरफ़ से यह प्रेशर आ रहा है कि वे बी.ए., एम.ए. करें। युवक–युवती यह निर्णय नहीं ले पा रहे हैं कि वे बी.ए. करें या न करें। चारों तरफ़ बेकारी और असंतोष है। बंगाल की आज जो हालत है, हम अच्छी तरह जानते हैं। फ़िल्म इसी पृष्ठभूमि पर तैयार की गई है कि आज किसी युवती के लिए बी.ए. करना ज़रूरी है या नहीं? बंगाल की दृष्टि से यह एक गंभीर समस्या है। मैंने नरेंद्र को समझाया।

इंटरवल समाप्त हो चुका था। हम हाल के अंदर घुस गए और उसी गंभीरता से आगे देखने लगे।

समझ नहीं आ रहा था कि हीरोइन यूनिवर्सिटी डिग्री लेने के मामले में गंभीर है, अथवा नहीं। वह हीरो के सामने मान लेती कि वह बी.ए. कर लेगी, जो ज़रूरी भी है, मगर जब विलेन उससे कहता तो वह साफ़ इनकार कर देती। एक बार तो उसने विलेन को कसकर डाँट दिया, जेटा आमी भावी, शेटा आमी कोरबो। अर्थात मुझे जैसा जँचेगा वैसा करूँगी। विलेन बिचक गया और उसने अपने निश्चित 'देख लूँगा, जाती कहाँ है' वाले अंदाज़ में गरदन हिलाता, डंडा घुमाता पगडंडी से चला गया।

एक दृष्य में विलेन ने गाँव के कतिपय स्नेही मित्र टाइप के गुंडों को एकत्र किया और शराब पिलाकर यह शैक्षणिक समस्या सामने रखी थी कि हीरोइन बी.ए. करने को तैयार नहीं, बोलो क्या करें। गुंडों को आश्चर्य हुआ कि विलेन के इतने आग्रह के बावजूद वह लड़की बी.ए. करने से इनकार करती है। उन्होंने शराब पी और प्रश्न की गंभीरता को समझा। बाद में उन्होंने लपलपाते छुरे और फरसे चमकाकर यह कसम खाई कि उनके होते यह संभव नहीं होगा कि हीरोइन बी.ए. न करे। उन्होंने विलेन को वचन दिया और पैर पटकते चले गए।

एक और दृश्य में हीरोइन की सहेली ने हीरोइन को इसी विषय में समझाते हुए कहा कि तुम बी.ए. क्यों नहीं कर लेतीं। हीरोइन ने कुछ कहा जिसका अर्थ शायद था कि 'ठीक है, मैं कर लूँगी!'

मेरे ख़याल से इसके बाद फ़िल्म समाप्त हो जानी चाहिए थी। आख़िरी सीन में लड़की को बी.ए. कक्षा में बैठा दिखाकर 'दी एंड' किया जा सकता था, मगर ऐसा नहीं हुआ। विलेन के स्नेही मित्रों ने हीरो को डंडे से पीटा। जवाब में हीरो ने भी हाथ दिखाए। शैक्षणिक प्रश्न का अंततः इस स्तर पर निपटारा होगा, इसकी उम्मीद नहीं थी। हीरोइन ने हीरो की बाँह पर पट्टी बाँधी और कड़े शब्दों में अपने बाप से बी.ए. करने का ऐलान करते हुए कहा, आमा के बीए कोरते केऊ थामाते पारबे ना।

और सच भी है। इस स्वतंत्र भारत में यदि कोई बी.ए. का अध्ययन करना चाहे तो उसे कौन थाम सकता है? चित्र के अंत में हीरो हीरोइन का हाथ पकड़ पब्लिक और कैमरामैन की तरफ़ पीठ किए एक ओर चला गया। शायद कालेज उसी ओर रहा होगा।

बाहर आकर नरेंद्र ने कहा, मेरे ख़याल से मूलतः यह फ़िल्म दो प्राइवेट कालेजों की लड़ाई पर बनी है। एक कालेज से हीरो संबद्ध है और दूसरे से विलेन। प्रतियोगिता इस बात की है कि वह सुंदरी कहाँ से बी.ए. करेगी। वह विलेन के कालेज से बी.ए. करना नहीं चाहती, क्योंकि वहाँ गुंडागर्दी ज़्यादा है, इसलिए वह अस्वीकार कर देती है। हीरो का विद्यापीठ शायद बेहतर है।

'बंगालवाले भी कमाल कर रहे हैं। कितनी नई थीम उठाकर फ़िल्में बना रहे हैं।' मैंने कहा।

पान की दुकान पर भट्टाचार्य बाबू मिल गए।
'क्यों जोशी साहब, इधर कैसा आया?'
'फ़िल्म देखने आया था, दादा, बंगाली फ़िल्म।'
'अरे तुमको बंगाली समझता?'
'समझता तो नहीं, दादा, फिर भी हमने सोचा, अच्छा फ़िल्म है, देखना चाहिए।'
'अच्छा है, अच्छा है।'
'एंड समझ नहीं आया, दादा!'
'क्या नहीं समझा?'
'हीरोइन ने ग्रेजुएशन कर लिया कि नहीं, दादा?'
'कैसा ग्रेजुएशन?' भट्टाचार्य आश्चर्य से बोले।
'हीरोइन कहती थी ना कि मैं बी.ए. करूँगी, मुझे कोई रोक नहीं सकता।'

भट्टाचार्य 'हो–हो' कर ज़ोर से हँसे और बोले, खूब समझा तुम लोग। अरे, बीए मतलब बैचलर ऑफ आर्टस् नहीं। बीए यानी ब्याह, शादी, मैरेज। – और वे फिर ज़ोर–ज़ोर से हँसने लगे।

एक भूतपूर्व मंत्री से मुलाकात

मंत्री थे तब उनके दरवाज़े कार बँधी रहती थी। आजकल क्वार्टर में रहते हैं और दरवाज़े भैंस बँधी रहती है। मैं जब उनके यहाँ पहुँचा वे अपने लड़के को दूध दुहना सिखा रहे थे और अफ़सोस कर रहे थे कि कैसी नई पीढ़ी आ गई है जिसे भैंसें दुहना भी नहीं आता। मुझे देखा तो बोले – 'जले पर नमक छिड़कने आए हो!'
'नमक इतना सस्ता नहीं है कि नष्ट किया जाए। कांग्रेस राज में नमक भी सस्ता नहीं रहा।'
'कांग्रेस को क्यों दोष देते हो! हमने तो नमक–आंदोलन चलाया।' – फिर बड़बड़ाने लगे, 'जो आता है कांग्रेस को दोष देता है। आप भी क्या विरोधी दल के हैं?'
'आजकल तो कांग्रेस ही विरोधी दल है।'

वे चुप रहे। फिर बोले, 'कांग्रेस विरोधी दल हो ही नहीं सकती। वह तो राज करेगी। अंग्रेज़ हमें राज सौंप गए हैं। बीस साल से चला रहे हैं और सारे गुर जानते हैं। विरोधियों को क्या आता है, फ़ाइलें भी तो नहीं जमा सकते ठीक से। हम थे तो अफ़सरों को डाँट लगाते थे, जैसा चाहते थे करवा लेते थे। हिम्मत से काम लेते थे। रिश्तेदारों को नौकरियाँ दिलवाईं और अपनेवालों को ठेके दिलवाए। अफ़सरों की एक नहीं चलने दी। करके दिखाए विरोधी दल! एक ज़माना था अफ़सर खुद रिश्वत लेते थे और खा जाते थे। हमने सवाल खड़ा किया कि हमारा क्या होगा, पार्टी का क्या होगा?'
'हमने अफ़सरों को रिश्वत लेने से रोका और खुद ली। कांग्रेस को चंदा दिलवाया, हमारी बराबरी ये क्या करेंगे?'
'पर आपकी नीतियाँ ग़लत थीं और इसलिए जनता आपके ख़िलाफ़ हो गई!'
'कांग्रेस से यह शिकायत कर ही नहीं सकते आप। हमने जो भी नीतियाँ बनाईं उनके ख़िलाफ़ काम किया है। फिर किस बात की शिकायत? जो उस नीति को पसंद करते थे, वे हमारे समर्थक थे, और जो उस नीति के ख़िलाफ़ थे वे भी हमारे समर्थक थे, क्योंकि हम

उस नीति पर चलते ही नहीं थे।'
मैं निरुत्तर हो गया।
'आपको उम्मीद है कि कांग्रेस फिर इस राज्य में विजयी होगी?'
'क्यों नहीं? उम्मीद पर तो हर पार्टी कायम है। जब विरोधी दल असफल होंगे और बेकार साबित होंगे, जब दो ग़लत और असफल दलों में से ही चुनाव करना होगा, तो कांग्रेस क्या बुरी? बस तब हम फिर 'पावर' में आ जाएँगे। ये विरोधी दल उसी रास्ते पर जा रहे हैं जिस पर हम चले थे और इनका निश्चित पतन होगा।'
'जैसे आपका हुआ।'
'बिल्कुल।'
'जब से मंत्री पद छोड़ा आपके क्या हाल हैं?'
'उसी तरह मस्त हैं, जैसे पहले थे। हम पर कोई फ़र्क नहीं पड़ा। हमने पहले से ही सिलसिला जमा लिया था। मकान, ज़मीन, बंगला सब कर लिया। किराया आता है। लड़के को भैस दुहना आ जाए, तो डेरी खोलेंगे और दूध बेचेंगे, राजनीति में भी रहेंगे और बिज़नेस भी करेंगे। हम तो नेहरू–गांधी के चेले हैं।'
'नेहरू जी की तरह ठाठ से भी रह सकते हैं और गांधी जी की तरह झोंपड़ी में भी रह सकते हैं। ख़ैर, झोंपड़ी का तो सवाल ही नहीं उठता। देश के भविष्य की सोचते थे, तो क्या अपने भविष्य की नहीं सोचते! छोटे भाई को ट्रक दिलवा दिया था। ट्रक का नाम रखा है देश–सेवक। परिवहन की समस्या हल करेगा।'
'कृषि–मंत्री था, तब जो खुद का फ़ार्म बनाया था, अब अच्छी फसल देता है। जब तक मंत्री रहा, एक मिनट खाली नहीं बैठा, परिश्रम किया, इसी कारण आज सुखी और संतुष्ट हूँ। हम तो कर्म में विश्वास करते हैं। धंधा कभी नहीं छोड़ा, मंत्री थे तब भी किया।'
'आप अगला चुनाव लड़ेंगे?'
'क्यों नहीं लड़ेंगे। हमेशा लड़ते हैं, अब भी लड़ेंगे। कांग्रेस टिकट नहीं देगी तो स्वतंत्र लड़ेंगे।'
'पर यह तो कांग्रेस के ख़िलाफ़ होगा।'
'हम कांग्रेस के हैं और कांग्रेस हमारी है। कांग्रेस ने हमें मंत्री बनने को कहा तो बने। सेवा की है। हमें टिकट देना पड़ेगा। नहीं देंगे तो इसका मतलब है कांग्रेस हमें अपना नहीं मानती। न माने। पहले प्रेम, अहिंसा से काम लेंगे, नहीं चला तो असहयोग आंदोलन चलाएँगे। दूसरी पार्टी से खड़े हो जाएँगे।'
'जब आप मंत्री थे, जाति–रिश्तेवालों को बड़ा फ़ायदा पहुँचाया आपने।'
'उसका भी भैया इतिहास है। जब हम कांग्रेस में आए और हमारे बारे में उड़ गई कि हम हरिजनों के साथ उठते–बैठते और थाली में खाना खाते हैं, जातिवालों ने हमें अलग कर

दिया और हमसे संबंध नहीं रखे। हम भी जातिवाद के ख़िलाफ़ रहे और जब मंत्री बने, तो शुरू–शुरू में हमने जातिवाद को कसकर गालियाँ दीं।'

'दरअसल हमने अपने पहलेवाले मंत्रिमंडल को जातिवाद के नाम से उखाड़ा था। सो शुरू में तो हम जातिवाद के ख़िलाफ़ रहे। पर बाद में जब जातिवालों को अपनी ग़लती पता लगी तो वे हमारे बंगले के चक्कर काटने लगे। जाति की सभा हुई और हमको मानपत्र दिया गया और हमको जाति – कुलभूषण की उपाधि दी। हमने सोचा कि चलो सुबह का भूला शाम को घर आया। जब जाति के लोग हमसे प्रेम करते हैं, तो कुछ हमारा भी फर्ज़ हो जाता है। हम भी जाति के लड़कों को नौकरियाँ दिलवाने, तबादले रुकवाने, लोन दिलवाने में मदद करते और इस तरह जाति की उन्नति और विकास में योग देते। आज हमारी जाति के लोग बड़े–बड़े पदों पर बैठे हैं और हमारे आभारी हैं कि हमने उन्हें देश की सेवा का अवसर दिया। मैंने लड़कों से कह दिया कि एम.ए. करके आओ चाहे थर्ड डिवीजन में सही, सबको लैक्चरर बना दूँगा। अपनी जाति बुद्धिमान व्यक्तियों की जाति होनी चाहिए। और भैया अपने चुनाव–क्षेत्र में जाति के घर सबसे ज़्यादा हैं। सब सॉलिड वोट हैं। सो उसका ध्यान रखना पड़ता है। यों दुनिया जानती है, हम जातिवाद के ख़िलाफ़ हैं। जब तक हम रहे हमेशा मंत्रिमंडल में राजपूत और हरिजनों की संख्या नहीं बढ़ने दी। हम जातिवाद से संघर्ष करते रहे और इसी कारण अपनी जाति की हमेशा मेजॉरिटी रही।'

लड़का भैंस दुह चुका था और अंदर जा रहा था। भूतपूर्व मंत्री महोदय ने उसके हाथ से दूध की बाल्टी ले ली।

'अभी दो किलो दूध और होगा जनाब। पूरी दुही नहीं है तुमने। लाओ हम दुहें।' – फिर मेरी ओर देखकर बोले, एक तरफ़ तो देश के बच्चों को दूध नहीं मिल रहा, दूसरी ओर भैंसें पूरी दुही नहीं जा रहीं। और जब तक आप अपने स्रोतों का पूरी तरह दोहन नहीं करते, देश का विकास असंभव हैं।'

वे अपने स्रोत का दोहन करने लगे। लड़का अंदर जाकर रिकार्ड बजाने लगा और 'चा चा चा' का संगीत इस आदर्शवादी वातावरण में गूँजने लगा। मैंने नमस्कार किया और चला आया।

शरद जोशी के कमलमुख से 'आलोचना'

"लेखक विद्वान हो न हो, आलोचक सदैव विद्वान होता है. विद्वान प्रायः भौंडी बेतुकी बात कह बैठता है. ऐसी बातों से साहित्य में स्थापनाएँ होती हैं. उस स्थापना की सड़ाँध से

वातावरण बनता है जिसमें कविताएँ पनपती हैं. सो, कुछ भी कहो, आलोचक आदमी काम का है." आज से आठ वर्ष पूर्व आलोचना पर अपने मित्रों के समूह में बोलते हुए यह विचार मैंने प्रकट किए थे. वे पत्थर की लकीर हैं. लेखक का साहित्य के विकास में महत्व है या नहीं है यह विवादास्पद विषय हो सकता है पर किसी साहित्यिक के विकास में किसी आलोचक का महत्व सर्वस्वीकृत है. साहित्य की वैतरणी तरना हो तो किसी आलोचक गैया की पूंछ पकड़ो, फिर सींग चलाने का काम उसका और यश बटोरने का काम कमलमुख का.

आलोचना के प्रति अपनी प्राइवेट राय जाहिर करने के पूर्व मैं आपको यह बताऊं कि आलोचना है क्या? यह प्रश्न मुझसे अकसर पूछा जाता है. साहित्यरत्न की छात्राएँ चूंकि आलोचना समझने को सबसे ज्यादा उत्सुक दिखाई देती हैं इसलिए यह मानना गलत न होगा कि आलोचना साहित्य की सबसे टेढ़ी खीर है. टेढ़ी खीर इसलिए कि मैं कभी इसका ठीक उत्तर नहीं दे पाता. मैं मुस्कराकर उन लड़कियों को कनखियों से देखकर कह देता हूँ, "यह किसी आलोचक से पूछिए, मैं तो कलाकार हूँ."

खैर, विषय पर आ जाऊँ. आलोचना शब्द लुच् धातु से बना है जिसका अर्थ है देखना. लुच् धातु से ही बना है लुच्चा. आलोचक के स्थान पर आलुच्चा या सिर्फ लुच्चा शब्द हिन्दी में खप सकता है. मैंने एक बार खपाने की कोशिश भी की थी, एक सुप्रसिद्ध आलोचक महोदय को सभा में परिचित कराते समय पिछली जनवरी में वातावरण बहुत बिगड़ा. मुझे इस शब्द के पक्ष में भयंकर संघर्ष करना पड़ा. आलोचक महोदय ने कहा कि आप शब्द वापस लीजिए. जनता ने भी मुझे चारों ओर से घेर लिया. मुझे पहली बार यह अनुभव हुआ कि हिंदी भाषा में नया शब्द देना कितना खतरा मोल लेना है. मैंने कहा, मैं शब्द वापस लेता हूँ. पर आप यह भूलिए नहीं कि आलोचना शब्द 'लुच' धातु से बना है.

अस्तु, बात आई गई हो गई. मैंने इस विषय में सोचना और चर्चा करना बंद सा कर दिया. पर यह गुत्थी मन में हमेशा बनी रही कि आलोचक का दायित्व क्या है? वास्तव में साहित्य के विशाल गोदाम में घुसकर बेकार माल की छंटाई करना और अच्छे माल को शो-केस में रखवाना आलोचक का काम माना गया है, जिसे वह करता नहीं. वह इस चक्कर में रहता है कि अपने परिचितों और पंथ वालों का माल रहने दें, बाकी सबका फिंकवा दें. यह शुभ प्रवृत्ति है और आज नहीं तो कल इसके लाभ नजर आते हैं. कोशिश करते रहना समीक्षक का धर्म है. जैसे हिन्दी में अभी तक यह तय नहीं हो पाया है कि मैथिलीशरण गुप्त, निराला और कविवर कमलमुख में कौन सर्वश्रेष्ठ है. एक राष्ट्रकवि है.

एक बहुप्रशंसित है और तीसरे से बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं.

समीक्षकों के इस उत्तरदायित्वहीन मूड के बावजूद पिछला दशक हिन्दी आलोचना का स्वर्णयुग था. जितनी पुस्तकें प्रकाशित नहीं हुईं उनसे अधिक आलोचकों को सादर भेंट प्राप्त हुई हैं. कुछ पुस्तकों को संपूर्ण संस्करण ही आलोचकों को सादर भेंट करने में समाप्त हो गया. समीक्षा की नई भाषा, नई शैली का विकास पिछले दशक में हुआ है. (दशक की ही चर्चा कर रहा हूँ क्योंकि मेरे आलोचक व्यक्तित्व का कंटीला विकास भी इसी दशक में हुआ है). हिन्दी का मैदान उस समय तक सूना था जब तक आलोचना की इस खंजर शब्दावली का जन्म नहीं हुआ था. इस शब्दावली के विशेषज्ञों का प्रकाशक की दूकान पर बड़ा स्वागत होते देखा है. प्रकाशक आलोचक पालते हैं और यदि इस क्षेत्र में मेरा जरा भी नाम हुआ तो विश्वास रखिए, किसी प्रकाशक से मेरा लाभ का सिलसिला जम जाएगा.

मैंने अपने आलोचक जीवन के शैशव काल में कतिपय प्रचलित शब्दावली, मुहावरावली और वाक्यावली का अनूठा संकलन किया था जिसे आज भी जब-तब उपयोग करता रहता हूँ. किसी पुस्तक के समर्थन तथा विरोध में किस प्रकार के वाक्य लिखे जाने चाहिए, उसके कतिपय थर्ड क्लास नमूने उदाहरणार्थ यहां दे रहा हूँ. अच्छे उदाहरण इस कारण नहीं दे रहा हूँ कि हमारे अनेक समीक्षक उसका उपयोग शुरू कर देंगे.

समर्थन की बातें

इस दृष्टि से रचना बेजोड़ है (दृष्टि कोई भी हो). रचना में छुपा हुआ निष्कलुष वात्सल्य, निश्छल अभिव्यक्ति मन को छूती है.
छपाई, सफाई विशेष आकर्षक है.
रूप और भावों के साथ जो विचारों के प्रतीक उभरते हैं, उससे कवि की शक्ति व संभावनाओं के प्रति आस्था बनती है.
कमलमुख की कलम चूम लेने को जी चाहता है. (दत्तू पानवाला की, यह मेरे विषय में व्यक्त राय देते हुए संकोच उत्पन्न हो रहा है परंतु उनके विशेष आग्रह को टाल भी तो नहीं सकता).
मनोगुम्फ़ों की तहों में इतना गहरा घुसने वाला कलाकार हिन्दी उपन्यास ने दूसरा पैदा नहीं किया.
आपने प्रेमचंद की परंपरा को बढ़ाया है. मैं यदि यह कहूं कि आप दूसरे प्रेमचंद हैं तो गलती नहीं करता.

कहानी में संगीतात्मकता के कारण उसी आनंद की मधुर सृष्टि होती है जो गीतों में पत्रकारिता से हो सकती है.

विरोध की बातें

कविता न कहकर इसे असमर्थ गद्य कहना ठीक होगा. भावांकन में शून्यता है और भाषा बिखर गई है.
छपाई, सफाई तथा प्रूफ संबंधी इतनी भूलें खटकने वाली हैं.
लेख कोर्स के लिए लिखा लगता है.
रचना इस यशसिद्ध लेखक के प्रति हमें निराश करती है. ऐसी पुस्तक का अभाव जितना खटकता था, प्रकाशन उससे अधिक अखरता है.
संतुलन और संगठन के अभाव ने अच्छी भाषा के बावजूद रचना को घटिया बना दिया है.
लेखक त्रिशंकु-सा लगता है – आक्रोशजन्य विवेकशून्यता में हाथ पैर मारता हुआ.
इन निष्प्राण रचनाओं में कवि का निरा फ्रस्ट्रेशन उभरकर आ गया है.
पूर्वग्रह ग्रसित दृष्टिकोण, पस्तहिम्मत, प्रतिक्रियाग्रस्त की तड़पन व घृणा, शब्द चमत्कार से कागज काला करने की छिछली शक्ति का थोथा प्रदर्शन ही होता है इन कविताओं में.
स्वयं लेखक की दमित, कुंठित वासना की भोंडी अभिव्यक्ति यत्र तत्र ही नहीं, सर्वत्र है.
सामाजिकता से यह अनास्था लेखक को कहाँ ले जाएगी. जबकि मूल्य अधिक है पुस्तक का.

ये वे सरल लटके-खटके हैं जिनसे किसी पुस्तक को उछाला जा सकता है, गिराया जा सकता है.

आलोचना से महत्वपूर्ण प्रश्न है आलोचक व्यक्तित्व का. पुस्तक और उसका लेखक तो बहाना या माध्यम मात्र है जिसके सहारे आलोचक यश अर्जित करता है. प्रसिद्धि का पथ साफ खुला है. स्वयं पुस्तक लिखकर नाम कमाइए अथवा दूसरे की पुस्तक पर विचार व्यक्त कर नाम कमाइए. बल्कि कड़ी आलोचना करने से मौलिक लेखक से अधिक यश प्राप्त होता है.

इस संदर्भ में मुझे एक वार्तालाप याद आता है जो साहित्यरत्न की छात्रा और मेरे बीच हुआ था-

रात के दस बजे/गहरी ठंड/पार्क की बेंच/वह और मैं/तारों जड़ा आकाश/ घुप्प एकांत

लुभावना.

वह- "आलोचना मेरी समझ में नहीं आती सर."
मैं- "हाय सुलोचना, इसका अर्थ है तुझमें असीम प्रतिभा है. सृजन की प्रचुर शक्ति है. महान लेखकों को आलोचना कभी समझ में नहीं आती."

वह- "आप आलोचना क्यों करते हैं?"
मैं- "और नहीं तो क्या करूं. दूसरे की आलोचना का पात्र बनने से बेहतर है मैं स्वयं आलोचक बन जाऊँ"

वह- "किसी की आलोचना करने से आपको क्या मिलता है?"
मैं- "उसकी पुस्तक"

कुछ देर चुप्पी रही.

वह- "सच कहें सर, आपको मेरे गले की कसम, झूठ बोलें तो मेरा मरा मुंह देखें. आलोचना का मापदंड क्या है? समीक्षक का उत्तरदायित्व आप कैसे निभाते हैं?"

उस रात सुलोचना के कोमल हाथ अपने हाथों में ले पाए बिना भी मैंने सच-सच कह दिया- "सुलोचना! आलोचना का मापदंड परिस्थितियों के साथ बदलता है. समूचा हिन्दी जगत तीन भागों में बंटा है. मेरे मित्र, मेरे शत्रु और तीसरा वह भाग जो मेरे से अपरिचित है. सबसे बड़ा यही, तीसरा भाग है. यदि मित्र की पुस्तक हो तो उसके गुण गाने होते हैं. सुरक्षा करता हूँ. शत्रु की पुस्तक के लिए छीछालेदर की शब्दावली लेकर गिरा देता हूँ. और तीसरे वर्ग की पुस्तक बिना पढ़े ही, बिना आलोचना के निबटा देता हूँ या कभी-कभी कुछ सफे पढ़ लेता हूँ. अपने प्रकाशक ने यदि किसी लेखक की पुस्तक छापी हो तो उसकी प्रशंसा करनी होती है ताकि कुछ बिक विक जाए. जिस पत्रिका में आलोचना देनी हो उसके गुट का खयाल करना पड़ता है. रेडियो के प्रोड्यूसर, पत्रों के संपादक तथा हिन्दी विभाग के अध्यक्ष आलोचना के पात्र नहीं होते. सुलोचना, सच कहता हूँ, प्रयोगवादी धारा का अदना-सा उम्मीदवार हूँ. अतः हर प्रगतिशील बनने वाले लेखक के खिलाफ लिखना धर्म समझता हूँ. फिर भी मैं कुछ नहीं हूँ. मुश्किल से एक-दो पुस्तक साल में समीक्षार्थ मेरे पास आती है बस... बस इतना ही."

(सुलोचना ने बाद में बताया उस रात मेरी आँखों में आंसू छलछला आए थे)

शरद जोशी के कमलमुख के कुछ पठनीय पत्र

पत्र 1

प्रिय भाई,

सुना है दिसंबर में कवि सम्मेलन आयोजित करवा रहे हो अपने नगर में. तब तो मिलना हो सकेगा. बुलवाओगे ना? यों तुम से क्या छुपा है? मार्ग व्यय और ऊपर से कुछ मिल जाए काफी है. आज्ञा सिर आँखों पर रख दौड़ा आऊंगा. हालांकि अभी तुम्हारा पत्र इस संबंध में आया नहीं है पर मैं व्यर्थ की औपचारिकताओं पर विश्वास नहीं करता. मेरी स्वीकृति समझो. पत्र डालना. भाभी को प्रणाम-बेबी को प्यार. विवाह तो हो ही गया होगा ना!

तुम्हारा अपना

कमलमुख

*************-************

पत्र 2

प्रिय भाई,

इस अभिनव पत्रिका के प्रकाशन के लिए मेरी लाख-लाख बधाइयाँ लो. सच कहूं – कैसी लगी? हिन्दी में पत्रिका का जो आदर्श रूप मेरी आंखों में है वह पूरा हो गया. कितनी सुंदर सज्जा, कैसा वस्तु चयन, क्या ही अच्छे विचार. भई वाह!

तुम्हारा ही सदा

कमलमुख

पुनश्च- रचना भेज रहा हूँ. जरा ध्यान रखना.

*************-************

पत्र 3

प्रिय भाई,

'धर्मशाला' में तुम्हारी कहानी पढ़ी. क्या कहने हैं. बरसों बाद अच्छी कहानी पढ़ पाया. हिन्दी में जिसे नई कहानी कहते हैं उसका सर्वश्रेष्ठ रूप तुम्हारी रचना में है. 'साहित्य-धर्म' के अगले अंक में मेरा गीत आ रहा है. कैसा लगा बताना. बाकी सब कुशल! आशा है स्वस्थ होंगे.

तुम्हारा सदैव,

कमु

*************-************

पत्र 4

प्रिय महोदय,

जब से आप आकाशवाणी के प्रोड्यूसर बनकर आए हैं, देख रहा हूं कार्यक्रम का स्तर निरंतर उठ रहा है. बधाई लीजिए. बड़ा श्रम करते हैं. स्वास्थ्य का ध्यान रखिए. एक शिकायत भी है- रेडियो मुझे भूल सा गया है. दो माह से कोई कांट्रैक्ट नहीं आया. उधर आना चाहता हूँ. मित्रों से मिलने की बड़ी इच्छा है. जल्दी जवाब दो. देखता हूँ कि डाकिया कब कांट्रैक्ट लाता है. और सब ठीक. पुस्तक कब आ रही है छपकर- पहली प्रति मैं पढ़ूंगा. बढ़िया सी आलोचना लिखने को बेताब हूं. भाभी को प्रणाम, बेबी को प्यार!

आपका,

कमलमुख

*************-************

पत्र 5

जनाब,

आपके प्रकाशन को पांडुलिपि भेजे दस माह हो गए. अभी तक स्वीकृति नहीं मिली. खेद है. कब प्रकाशित कर रहे हैं, शीघ्र लिखिए. इस संबंध में मेरा यह पांचवां पत्र है.

भवदीय,

कमलमुख